# वैदिक-साहित्य में ''प्राणायाम'' की मीमांसा

वैदिक साहित्य में जीवन को समुन्नत बनाने हेतु ही समस्त ऋचायें हैं जिनका इस मानव से आवाहन है कि वह असत् से सत् की ओर, तमस से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरता की ओर जाये, अत: कहा गया है -

**''असतो मा सद्गमय**
**तमसो मा ज्योतिर्गमय**
**मृत्योर्मामृतम् गमय।''**

शरीर के स्वास्थ्य के लिए उपवास तथा मन के स्वास्थ्य के लिए 'प्राणायाम' आवश्यक है। वस्तुत: आरोग्य दो प्रकार से होता है जिसके लिए शरीर के आरोग्य के साथ-साथ 'मन' का आरोग्य अपेक्षित है। शरीर का स्वास्थ्य 'धर्म' के साधन के लिए है। जब तक शरीर स्वस्थ नही होता, मानव किसी भी कार्य को कुशलता से नही कर सकता अत: नीति वचनों में कहा गया है :-

**''शरीर माद्यंखलुधर्म साधनम्''** अर्थात् शरीर हीधर्म का साधन है। 'आत्मा' को शरीर रुपी रथ का संचालक कहा गया है :-

**''आत्मानं रथिनं बिध्दि शरीर रथमेव तु''**

''चरक''में आरोग्य को धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष का साधन कहा गया है :- **'' धर्मार्थ काम मोक्षाणां आरोग्यं मूलमुत्तमम्''** (चरक सू.।) इन सभी सुवाच्यों का आधार है वैदिक-साहित्य जिसमें प्राणायांम के द्वारा ज्ञान प्राप्ति को समझाया गया है :-

**''वीलु चिदारुजत्नुभिर्गुहाचिदिन्द्र बह्विभि:।**
**अविन्द उस्त्रिया अनु।''** (ऋ. १/६/५)

अर्थात् हे जीवात्मन्। तू पीड़ा देने वाले, जीवन धारण के कारणभूत, प्राणों द्वारा छिपी हुई भी ज्ञान किरणों को शीघ्रता से ही अनुकूलता से प्राप्त करता है। यहाँ प्राणों को प्राण न कहकर ''ब्रह्वि'' (आग) कहा गया है। जब तक प्राण शरीर में रहते हैं तभी तक जीवाग्नि रहती है अन्यथा शरीर ठंडा हो जाता है।

अत:'प्राण' आग एवं ऊर्जा के प्रतीक हैं तथा यही ऊर्जा हमारी शक्ति का आधार है। यह भी निर्विवाद है कि आग जहाँ सुख का साधन है वहाँ पीड़ा का साधन भी है। ग्रीष्म में सारे पदार्थ सूखने लगते हैं उसी प्रकार प्राणाग्नि को जब ईंधन नही मिलता, तब यह शरीरस्थ मांस और रक्त को जलाने लगता है, किन्तु प्राणों का पीड़ादायकत्व पूरा-पूरा मरण समय में ज्ञाता होता है।

संसार के प्रति अन्ध-आसक्ति रखने वाले लोग प्राणों को जीवन पर्यन्त ऊर्जा नही दे पाते। दुष्परिणाम स्वरुप अन्त समय में जब प्राण देह रुपी पिंजरे से निकलने का प्रयास करते हैं, उन्हें निकलने का मार्ग अवरुद्ध दीखता है, जिससे प्राणों की पीड़ादायक छटपटाहट बढ़ती जाती है। अत्यन्त पीड़ा एवं अवरोधों के बाद, अन्तत: प्राण पिंजर से बाहर निकल जाते हैं किन्तु मुमुक्षु (मोक्ष को चाहने वाले) विरक्ति के भाव से स्वयं, प्राणों को खींचकर बाहर कर देते हैं। सांसारिकता के दलदल में फसे, साधारण लोगों की अपेक्षा इनकी मृत्यु दुखदाई नही होती। प्रणव के जप में तन्मय मुमुक्ष अपने प्राणों को आराम से बाहर निकाल देते हैं।

जीव के सम्मुख दो मार्ग हैं जो जीवन व मरण से सम्बद्ध हैं। जीवन के मार्ग का आधार है ''धर्म'' अर्थात् घ्रति-क्षमा-दम-अस्तेय-शौच-इन्द्रियनिग्रहधी, विद्या, सत्य, तथा अक्रोध,इन्हें धारण करना, तथा इनके धारक को प्राणाग्नि प्राप्त होती है, जो जलाती नही, अपितु प्राणों को पालती है।मृत्यु-मार्ग के साधक को प्राणाग्नि जलाती है, क्योंकि वह अधर्म के मार्ग पर चलकर भौतिक धन-सम्पत्ति एवं सांसारिक वस्तुओं को प्राप्त करना चाहता है।धर्म की हत्या कर वह स्वयं अपनी ही हत्या कर लेता है। प्राणों का धारक बनने की अपेक्षा प्राणों से हर पल जलाया जाता है। किन्तु प्राणों के धारक ही प्राणो के साधक होकर, अज्ञान का आवरण हटा सकते हैं, वैदिक-ऋचाओं का आवाहन है कि जीव ज्ञानाग्नि को प्राप्त करे:-

**''अविन्द उस्त्रिया अनु''** अर्थात् हे आत्मन् तू ही ज्ञान -किरणों को अनुकूलता से प्राप्त कर लेता है।

महर्षि पतंजलि के अनुसार प्राणायांम के द्वारा ही अज्ञान का पर्दा हटाया जा सकता है :-

**''तत: क्षीयते प्रकाशावरणम्''** (योग-दर्शन २/५२)

अर्थात् प्राणायाम की सिद्धि से बुद्धि-प्रकाश पर पड़ा हुआ आवरण नष्ट होता है।

वेद-मन्त्रों में इसी सत्य को उद्घाटित किया गया है - **''यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति''**(ऋ.१०/१६/२) जब साधक इस असुनीति-प्राण चालन-विद्या को प्राप्त कर लेता है, तब वह इन्द्रियों का वशकर्त्ता हो जाता है।

इन्द्रियाँ तभी वश में होती हैं जब प्राण वश में होते हैं। इन्द्रियाँ मन के आधीन हैं, किन्तु मन अत्यन्त चंचल है, क्योंकि मन जिधर जाता है, इन्द्रियाँ भी उधर जाती हैं। प्राण चालनविद्या से इन्द्रियों को मन के वश में करने का अर्थ है कि इन्द्रियों के

अधिष्ठाता 'मन' को वश में करना यही 'योग' (चित्र वृत्तियों का निरोध) है जिसे कठोपनिषद् में व्याख्यायित किया गया हैं :-

**''यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।**
**बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ।।''**

(कठो. २/३/१०,११)

अर्थात् - जब मन के साथ पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ रुक जाती हैं और बुद्धि निश्चल हो जाती है, उस अवस्था को परम गति कहते हैं , तथा इन्द्रियों की यही स्थिर धारणा योग कहलाती है। वस्तुतः प्राणायाम से अशुद्धि का नाश तथा ज्ञान का प्रकाश होता है, जिससे मानव का पूरा जीवन प्रभावित होता है। प्राणायाम का सम्बन्ध बुद्धि से है, बुद्धि के निर्मल होने से बुद्धि सूक्ष्मरुप हो जाती है, जिससे वह कठिन और सूक्ष्म विषयों को भी जल्दी ग्रहण कर लेती है। बुद्धि की पवित्रता से आचार और विचार प्रभावित होते हैं, जिससे स्थिर बल, पराक्रम, तथा जितेन्द्रियता प्राप्त होती है। अल्पकाल में शास्त्र ज्ञान होने से ज्ञान का विकास होता है जो समुन्नत जीवन की पहचान है, जिसके बिना जीवन अधूरा है।

आधुनिक अन्ध भौतिक वादी युग में धन-वैभव-शिक्षा व अन्य सुखसुविधायें प्राप्त होने के बाद भी मानव अशान्त क्यों हैं? सब प्राप्त करने के बाद भी अधूरा, एवं असन्तुष्ट क्यों है ? शिक्षा प्राप्त कर भी ज्ञानी क्यों नहीं ? विविध तापों की ज्वाला में जलकर, वह बैचैन क्यों हैं ? इन प्रश्नों पर वह विचार क्यों नही करता ? वह दूरदर्शन देखकर एवं उथली पत्र पत्रिकाओं में उलझकर, आखिर क्या तलाशता हैं ? व्यस्त रहकर भी वह अपने साध्य से दूर क्यों है?

इन सभी जटिल प्रश्नों का एक ही उत्तर है कि उस की जीवन रुपी रेल सदविचारों की पटरी से उतर चुकी है फिर मंजिल कैसे मिल सकती है। चरित्रभ्रष्ट होकर, वह विवेक शून्य हो गया, इसी कारण 'धर्म' के वास्तविक अर्थ को भूलकर अधर्म के मनमाने रास्ते पर चलने लगा। वह अपने से संवाद न कर बाहरी क्रिया कलापों मे उलझा रहता है। आत्मदर्शन, आस्तिकता, कर्तव्यबोध, एवं आत्मजागृति के द्वारा ही वह अपने अशान्त जीवन को शान्ति की सुख दायिनी धारा से जोड़ सकता है। आत्मिकसुख के बिना भौतिक सम्पन्नता की अनुभूति नही हो सकती। आत्मिक सुख के आधार प्राणायाम, अर्थात् प्राणों की ऊर्जा को विकसित करना आवश्यक है, जिसके लिए सनातन वैदिक धर्म के विश्वजनीन पथ का अनुगमन अपेक्षित है : हमें आत्मावलोकन करना चाहिये, जिसे सर इकबाल ने सहजता से कह दिया :

**'' अपने मन में डूब के पा जा सुरागे-जिन्दगी**
**तू अगर मेरा नही बनता न बन, अपना तो बन।''**

**- डा. महाश्वेता चतुर्वेदी**
प्रोफेसर्स कालोनी श्यामगंज, बरेली-२४३००५